

भगवद्गीता में भारतीय मनोविज्ञान: मन, चित्त और चेतना का विवेचनात्मक अध्ययन

सोनू रानी

योग प्रशिक्षक

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।

दलीप कुमार

योग प्रशिक्षक

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।

राहुल सिंह चौहान

योग प्रशिक्षक

मोरारजी देसाई राष्ट्रीय योग संस्थान, नई दिल्ली।

शोध-सार

भारतीय मनोविज्ञान मानव मन को केवल व्यवहार, भावना अथवा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं मानता, बल्कि उसे चेतना-आधारित समग्र दृष्टिकोण से समझता है। इस परंपरा में मनुष्य को शरीर, मन, चित्त और चेतना की एक अविभाज्य इकाई के रूप में देखा गया है, जिसका अंतिम लक्ष्य आत्मबोध और मानसिक संतुलन है। भगवद्गीता भारतीय दर्शन का एक ऐसा अद्वितीय ग्रंथ है, जो अर्जुन के मानसिक विषाद और द्वंद्व के माध्यम से मानव मन की जटिलताओं का सूक्ष्म एवं व्यावहारिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को प्रोत्साहित करते हुए जिन सम्बोधन के शब्दों का प्रयोग किया गया है (Manglik, 2024) वे आधुनिक मनोविज्ञान के मनोवैज्ञानिक परामर्श (Psychological Counselling) से सीधे संबंधित हैं जैसे- हे पुरुषश्रेष्ठ, हे महाबाहो, हे निष्पाप, हे कुरुश्रेष्ठ, हे परंतप, हे जितेंद्रिय, हे भरतश्रेष्ठ, हे धनंजय, हे नरश्रेष्ठ, हे तपस्वी आदि। इस शोध-पत्र का उद्देश्य भगवद्गीता



में निहित भारतीय मनोविज्ञान की प्रमुख अवधारणाओं-मन, चित और चेतना-का गहन अध्ययन करना है(Patel, 2016)।

भगवद्गीता में मन को विचार, और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का केंद्र बताया गया है। मन की चंचलता और अस्थिरता को स्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण उसे नियंत्रित करने के लिए अभ्यास और वैराग्य जैसे मनोवैज्ञानिक उपाय प्रस्तुत करते हैं(SRIVASTAVA & SHARMA, 2025a)। चित भारतीय मनोविज्ञान में अवचेतन स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ कर्मों और अनुभवों से उत्पन्न संस्कार संचित रहते हैं। ये संस्कार व्यक्ति के स्वभाव, आदतों और मानसिक प्रवृत्तियों को आकार देते हैं। भगवद्गीता निष्काम कर्म, भक्ति और योग के माध्यम से चित-शुद्धि पर विशेष बल देती है, जिससे मानसिक स्थिरता और विवेक शक्ति का विकास होता है।(Pestonjee & Pandey, 2017)

चेतना भगवद्गीता में आत्मतत्त्व के रूप में वर्णित है, जो मन और चित से परे नित्य, अजन्मा और अविनाशी है। चेतना का बोध व्यक्ति को भय, शोक और मोह से मुक्त करता है तथा साक्षी-भाव की अनुभूति कराता है। भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य का सर्वोच्च स्तर वही है, जहाँ व्यक्ति स्व में स्थित होकर जीवन की परिस्थितियों का सामना करता है(Selye, 2017)। इस प्रकार भगवद्गीता मन, चित और चेतना के समन्वय द्वारा एक समग्र मनोवैज्ञानिक ढांचा प्रस्तुत करती है।

आज के समय में, जब तनाव, अवसाद और मानसिक असंतुलन की समस्याएँ तीव्र हो रही हैं, भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान, मानसिक स्वास्थ्य के साथ, मानव के समग्र विकास हेतु अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है। यह अध्ययन आधुनिक मनोविज्ञान को चेतना-आधारित एक समग्र और मानवीय दृष्टि प्रदान करने में भी सहायक हो सकता है।

मुख्य शब्द- भगवद्गीता, भारतीय मनोविज्ञान, मन-चित-चेतना, आत्मबोध, मानसिक संतुलन, योग-दर्शन

भूमिका- मानव जीवन का मूल आधार मन है। मन के माध्यम से ही मनुष्य विचार करता है, निर्णय लेता है तथा अपने व्यवहार और कर्मों का निर्धारण करता है। आधुनिक युग में तीव्र सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी परिवर्तनों के कारण मानव जीवन में तनाव, चिंता, अवसाद और मानसिक असंतुलन की समस्याएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। सामान्यतः मनोविज्ञान इन समस्याओं का अध्ययन मुख्यतः व्यावहारिक



और संज्ञानात्मक स्तर पर करता है, किंतु वह प्रायः चेतना और आत्मतत्त्व जैसे गहन आयामों को अपने अध्ययन से बाहर रखता है। जिसके परिणामस्वरूप मानसिक स्वास्थ्य की समस्याओं का समाधान प्रायः अधूरा रह जाता है। इसके विपरीत, भारतीय मनोविज्ञान मानव मन को केवल मानसिक प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं मानता, बल्कि उसे चेतना-आधारित समग्र दृष्टिकोण से समझता है। भारतीय दर्शन में मनुष्य को शरीर, मन, चित्त और चेतना की एक अविभाज्य इकाई के रूप में देखा गया है, जहाँ मनोविकास का अंतिम लक्ष्य आत्मबोध और मानसिक संतुलन की प्राप्ति है। इस संदर्भ में भगवद्गीता भारतीय ज्ञान परंपरा का एक ऐसा अद्वितीय ग्रंथ है, जो दार्शनिक होने के साथ-साथ एक गहन मनोवैज्ञानिक ग्रंथ भी है (Pattanaik, 2015)।

भगवद्गीता का प्रारंभ अर्जुन के विषाद से होता है, जो मानव मन की द्वंद्वात्मक स्थिति, नैतिक संकट और भावनात्मक असंतुलन का प्रतीक है। श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया उपदेश न केवल आध्यात्मिक मार्गदर्शन प्रदान करता है, बल्कि मानव मन की संरचना, उसकी चंचलता तथा उसके नियंत्रण के उपायों का भी स्पष्ट विवेचन करता है। गीता में मन, चित्त और चेतना की अवधारणाएँ भारतीय मनोविज्ञान की आधारशिला हैं, जिनके माध्यम से मानव व्यक्तित्व के बाह्य, आंतरिक और आत्मिक स्तरों का विश्लेषण किया गया है (Tomar, 2014)। मन को गीता में संकल्प-विकल्प और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का केंद्र माना गया है, जबकि चित्त को संस्कारों और अनुभवों का भंडार बताया गया है। चेतना इन दोनों से परे आत्मतत्त्व है, जो साक्षी रूप में स्थित रहती है। इन तीनों के समन्वय द्वारा गीता एक ऐसा समग्र मनोवैज्ञानिक मॉडल प्रस्तुत करती है, जो न केवल मानसिक समस्याओं के समाधान की दिशा दिखाता है, बल्कि मानव जीवन को संतुलित, नैतिक और सार्थक बनाने का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान की अवधारणाओं-मन, चित्त और चेतना-का विश्लेषण करना तथा उनकी समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है।

अध्ययन के उद्देश्य-

1. भगवद्गीता में वर्णित भारतीय मनोविज्ञान की (Jenning & Dass, 2023a) अवधारणा का अध्ययन करना।
2. गीता में मन (Mind), चित्त (Chitta) और चेतना (Consciousness) की संकल्पना का विश्लेषण करना।



3. मन, चित्त और चेतना के पारस्परिक संबंध तथा मानव व्यवहार पर उनके प्रभाव को स्पष्ट करना।
4. अर्जुन के विषाद के संदर्भ में गीता के मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को समझना।
5. गीता में वर्णित मन-नियंत्रण एवं मानसिक संतुलन के उपायों का विवेचन करना।
6. समकालीन जीवन में मानसिक तनाव, चिंता एवं भावनात्मक असंतुलन के समाधान हेतु गीता के मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों की प्रासंगिकता को रेखांकित करना।
7. मानव व्यक्तित्व के समग्र विकास में चेतना की भूमिका को स्पष्ट करना।

भारतीय मनोविज्ञान: एक संक्षिप्त परिचय

भारतीय मनोविज्ञान मानव मन, चेतना और व्यवहार के अध्ययन की एक प्राचीन, गहन एवं समग्र परंपरा है, जिसकी जड़ें वेदों, उपनिषदों, भगवद्गीता, योगदर्शन तथा सांख्य दर्शन में निहित हैं। यह मनोविज्ञान केवल मानसिक प्रक्रियाओं के विश्लेषण तक सीमित नहीं है, बल्कि मानव जीवन के आध्यात्मिक, नैतिक एवं व्यवहारिक पक्षों को भी समाहित करता है। भारतीय दृष्टिकोण में मन को केवल जैविक या संज्ञानात्मक क्रिया नहीं माना गया, बल्कि उसे चेतना के विकास का एक साधन समझा गया है (Vidyalankar, 1990)।

पाश्चात्य मनोविज्ञान जहाँ मुख्यतः व्यवहार, मस्तिष्क एवं मानसिक रोगों के अध्ययन पर केंद्रित रहा है (Sharma, 2009), वहीं भारतीय मनोविज्ञान आत्मा (आत्मनः), मन (मनसः), बुद्धि, अहंकार और चित्त जैसे सूक्ष्म तत्त्वों के माध्यम से मानव व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। इसका प्रमुख उद्देश्य केवल मानसिक समस्याओं का समाधान नहीं, बल्कि मनुष्य को आत्मबोध, मानसिक संतुलन और मोक्ष की दिशा में अग्रसर करना है।

भारतीय मनोविज्ञान के अनुसार मन चंचल, अस्थिर और विषयों की ओर आकर्षित होने वाला तत्त्व है, जबकि चित्त स्मृति, संस्कार और अनुभवों का भंडार है। चेतना को सर्वोच्च तत्त्व माना गया है, जो मन और चित्त का साक्षी स्वरूप है। योग, ध्यान, आत्मसंयम और विवेक के माध्यम से मन को शुद्ध कर चेतना के उच्च स्तर तक पहुँचना ही भारतीय मनोविज्ञान का मूल लक्ष्य है।

इस परंपरा में दुःख, तनाव, भय और मोह को अज्ञान और असंयमित मन का परिणाम माना गया है। अतः मानसिक स्वास्थ्य का उपाय बाह्य साधनों के बजाय आंतरिक अनुशासन, आत्मचिंतन और साधना में निहित है।



इसी कारण भारतीय मनोविज्ञान आज के तनावग्रस्त और भौतिकतावादी समाज में भी अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है।

भगवद्गीता भारतीय मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें मानव मन की द्वंद्वात्मक स्थिति, चेतना की उन्नति और चित्त-शुद्धि के उपायों का व्यावहारिक एवं दार्शनिक विवेचन प्राप्त होता है। इस प्रकार भारतीय मनोविज्ञान न केवल एक शास्त्रीय अवधारणा है, बल्कि मानव जीवन को संतुलित, सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बनाने की एक वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि भी है (SRIVASTAVA & SHARMA, 2025b)।

भगवद्गीता में मन की अवधारणा -

भगवद्गीता में मन को मानव जीवन की केन्द्रीय शक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। गीता के अनुसार मन न तो पूर्णतः शत्रु है और न ही स्वभावतः मित्र, अपितु वह साधना और अनुशासन के आधार पर मनुष्य का मित्र या शत्रु बन जाता है। मन की यही द्वैतात्मक प्रकृति भारतीय मनोविज्ञान का मूल आधार है (डॉ. सुरेन्द्र पाल सिंह, 2025)।

श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए स्पष्ट करते हैं कि मन कि प्रवृत्ति अत्यंत चंचल और अस्थिर है जिसको नियंत्रित करना कठिन है। अर्जुन स्वयं स्वीकार करता है- “चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्” (गीता 6.34) अर्थात् मन चंचल, प्रमथनशील और अत्यंत बलवान है। यह कथन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मानव मन की अस्थिरता और विचलन की प्रवृत्ति को रेखांकित करता है।

गीता में मन को इन्द्रियों से भी अधिक शक्तिशाली बताया गया है, क्योंकि इन्द्रियाँ मन के माध्यम से ही विषयों की ओर प्रवृत्त होती हैं। जब मन विषयासक्ति में लिप्त हो जाता है, तब वह बंधन का कारण बनता है; किंतु जब वही मन संयमित, स्थिर और आत्मा में स्थित हो जाता है, तब वह मुक्ति का साधन बन जाता है। गीता के अनुसार-

“उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्” (गीता 6.5)

मनुष्य स्वयं अपने मन के द्वारा अपना उद्धार या पतन कर सकता है (Jenning & Dass, 2023a)।

भगवद्गीता में मन के नियंत्रण हेतु अभ्यास और वैराग्य को प्रमुख साधन बताया गया है। निरंतर अभ्यास से मन को एकाग्र किया जा सकता है तथा वैराग्य के माध्यम से विषयासक्ति को क्षीण किया



जा सकता है। यह दृष्टिकोण आधुनिक मनोविज्ञान की आत्म-नियमन (self-regulation) की अवधारणा से भी साम्य रखता है।

इसके साथ ही भगवद्गीता में मन को तीन गुणों-सत्त्व, रजस और तमस-से प्रभावित माना गया है। सत्त्वगुणी मन शुद्ध, स्थिर और ज्ञानोन्मुख होता है, रजोगुणी मन चंचल, कामनाओं से युक्त होता है जबकि तमोगुणी मन जड़ता, प्रमाद और अज्ञान से आच्छादित रहता है। इस प्रकार मन की अवस्था व्यक्ति के व्यवहार, निर्णय और मानसिक स्वास्थ्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

भगवद्गीता में मन की अवधारणा केवल दार्शनिक न होकर गहन मनोवैज्ञानिक महत्व रखती है। मन का संयम, शुद्धि और स्थिरीकरण मानव जीवन को संतुलित, उद्देश्यपूर्ण और आत्मोन्मुख बनाने का सशक्त माध्यम है।

चेतना: आत्मतत्त्व का बोध-

भारतीय दर्शन एवं मनोविज्ञान में *चेतना* को मानव अस्तित्व का मूल तत्त्व माना गया है। चेतना न केवल ज्ञान की आधारभूमि है, बल्कि वही आत्मतत्त्व का साक्षात्कार भी कराती है। भगवद्गीता में चेतना को शुद्ध, नित्य, अविनाशी और शरीर-मन से भिन्न सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह चेतना ही जीव को जड़ पदार्थ से भिन्न बनाती है।

भगवद्गीता के अनुसार आत्मा चेतन, अजर, अमर और अविकार्य है- “न जायते म्रियते वा कदाचित्...” (गीता 2.20) अर्थात् आत्मा न कभी जन्म लेती है और न कभी नष्ट होती है। यह श्लोक चेतना के शाश्वत स्वरूप को स्पष्ट करता है (Jenning & Dass, 2023a)। आत्मा ही चेतना का मूल स्रोत है, जबकि मन, बुद्धि और चित्त इसके उपकरण (instruments) के रूप में कार्य करते हैं।

गीता में चेतना को *साक्षी भाव* से जोड़ा गया है। चेतना स्वयं कर्ता नहीं है, बल्कि वह मन, इन्द्रियों और कर्मों की साक्षी रहती है। जब व्यक्ति स्वयं को मन और इन्द्रियों से पृथक कर आत्मा रूप में अनुभव करता है, तभी उसे आत्मतत्त्व का बोध होता है। श्रीकृष्ण कहते हैं- “क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत” (गीता 13.2) अर्थात् प्रत्येक शरीर में स्थित चेतन तत्त्व ही आत्मा है।



भारतीय मनोविज्ञान में चेतना को *अवस्थाओं* के माध्यम से समझा गया है-जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। इन तीनों अवस्थाओं में परिवर्तन होते हुए भी चेतना सदा विद्यमान रहती है। यही चेतना अनुभवों की निरंतरता बनाए रखती है। भगवद्गीता इस निरंतर चेतना को आत्मज्ञान का आधार मानती है। चेतना की शुद्ध अवस्था को *स्थितप्रज्ञ* की अवस्था कहा गया है। स्थितप्रज्ञ व्यक्ति सुख-दुःख, लाभ-हानि और मान-अपमान में समभाव बनाए रखता है। यही समत्व चेतना की परिपक्वता का प्रतीक है-
“दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः” (गीता 2.56)(Jenning & Dass, 2023b)

आधुनिक मनोविज्ञान में चेतना (*consciousness*) को प्रायः संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं तक सीमित रखा जाता है, जबकि भारतीय दृष्टि में चेतना आध्यात्मिक विकास का साधन भी है। गीता की चेतना-संबंधी अवधारणा व्यक्ति को आत्म-बोध, नैतिकता और मानसिक संतुलन की ओर अग्रसर करती है। भगवद्गीता में चेतना आत्मतत्त्व का बोध कराने वाली केन्द्रीय शक्ति है, जो मनुष्य को अज्ञान से ज्ञान और बंधन से मुक्ति की ओर ले जाती है।

चित्तः संस्कार और स्मृति का आधार-

भारतीय मनोविज्ञान में *चित्त* को मनःसंरचना का अत्यंत सूक्ष्म और गहन स्तर माना गया है। भगवद्गीता में यद्यपि ‘चित्त’ शब्द का प्रयोग सीमित रूप में मिलता है, तथापि योग एवं सांख्य दर्शन के संदर्भ में चित्त का तात्पर्य मन, बुद्धि और अहंकार के संयुक्त क्षेत्र से है, जिसमें संस्कार, वासनाएँ और स्मृतियाँ संचित रहती हैं। चित्त मानव व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसे अनुभवों का भंडार भी कहा जा सकता है। प्रत्येक कर्म, विचार और भावना का प्रभाव चित्त पर संस्कार के रूप में अंकित हो जाता है। यही संस्कार आगे चलकर मनुष्य की प्रवृत्ति, रुचि और व्यवहार का निर्धारण करते हैं। भगवद्गीता कर्म और संस्कार के इस संबंध को स्पष्ट करती है-
“सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि” (गीता 3.33) अर्थात् ज्ञानी व्यक्ति भी अपने स्वभाव (संस्कार) के अनुसार ही आचरण करता है।

गीता में चित्त की शुद्धि को आध्यात्मिक उन्नति के लिए अनिवार्य माना गया है। अशुद्ध चित्त कामना, आसक्ति और मोह से युक्त रहता है, जिससे व्यक्ति बंधन में पड़ता है(Dhar, n.d.)। इसके विपरीत शुद्ध चित्त ज्ञान और विवेक की प्राप्ति में सहायक होता है। कर्मयोग के माध्यम से निष्काम कर्म करते



हुए चित्त की शुद्धि संभव बताई गई है “योगः कर्मसु कौशलम्” (गीता 2.50) चित्त का संबंध स्मृति से भी घनिष्ठ है। स्मृति के माध्यम से पूर्व अनुभव वर्तमान में सक्रिय होते हैं और निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। यदि चित्त में नकारात्मक संस्कार प्रबल हों, तो व्यक्ति बार-बार मानसिक अशांति, भय और द्वंद्व का अनुभव करता है। इसलिए गीता में अभ्यास, ध्यान और वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध पर बल दिया गया है। योगदर्शन के अनुसार “योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः” चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है (निधि et al., 2025)। भगवद्गीता भी इसी सिद्धांत को व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है। यहाँ चित्त को संस्कारों का आधार, स्मृति का केंद्र और आध्यात्मिक साधना का क्षेत्र माना गया है। चित्त की शुद्धि एवं नियंत्रण के बिना न तो मानसिक संतुलन संभव है और न ही आत्मबोध की प्राप्ति। भगवद्गीता में वर्णित ध्यानयोग के माध्यम से चित्त को एकाग्र कर चेतना को आत्मतत्त्व में स्थित किया जा सकता है।

मन-चित्त-चेतना का पारस्परिक संबंध-

भारतीय मनोविज्ञान में मन, चित्त और चेतना को अलग-अलग न मानकर एक समन्वित संरचना के रूप में देखा गया है। भगवद्गीता में इन तीनों तत्त्वों का संबंध मानव व्यक्तित्व, व्यवहार और आध्यात्मिक विकास से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। मन, विचार और संकल्प-विकल्प का क्षेत्र है, चित्त अनुभवों और संस्कारों का भंडार है, जबकि चेतना आत्मतत्त्व का प्रकाश है, जो मन और चित्त को अर्थ प्रदान करती है।

मन इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य जगत से संपर्क स्थापित करता है। जब मन विषयों की ओर प्रवृत्त होता है, तब उनके प्रभाव चित्त में संस्कार के रूप में संचित हो जाते हैं। यही संस्कार पुनः मन को प्रभावित कर उसे उसी प्रकार की वृत्तियों की ओर प्रेरित करते हैं। इस प्रकार मन और चित्त के बीच निरंतर परस्पर क्रिया होती रहती है। यदि चित्त में रजस और तमस प्रधान संस्कार हों, तो मन चंचल और अशांत रहता है (Sinha, 2012)। चेतना इन दोनों से भिन्न होते हुए भी उनके माध्यम से ही अपने अनुभव व्यक्त करती है। चेतना स्वयं निर्विकार और साक्षी स्वरूप है, किंतु जब वह मन और चित्त से तादात्म्य स्थापित कर लेती है, तब व्यक्ति स्वयं को कर्ता-भोक्ता मानने लगता है। यही अज्ञान की स्थिति है। भगवद्गीता इस तादात्म्य को दुःख का मूल कारण मानती है।

जब साधना, विवेक और ज्ञान के द्वारा मन को संयमित तथा चित्त को शुद्ध किया जाता है, तब चेतना अपने वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित होती है। यह अवस्था *स्थितप्रज्ञ* कहलाती है। ऐसी स्थिति में मन



न तो विषयों में आसक्त होता है और न ही चित्त नए बंधनकारी संस्कार ग्रहण करता है। वह बुने हुए बीज के समान हो जाता है।

भगवद्गीता के अनुसार योग, ध्यान और निष्काम कर्म के अभ्यास से मन-चित्त की शुद्धि होती है और चेतना आत्मतत्त्व का बोध करती है। इस समन्वय से व्यक्ति मानसिक संतुलन, नैतिक दृढ़ता और आध्यात्मिक परिपक्वता प्राप्त करता है। मन, चित्त और चेतना का संतुलित एवं समन्वित कार्य ही भारतीय मनोविज्ञान की केन्द्रीय अवधारणा है, जिसे भगवद्गीता गहन दार्शनिक एवं व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करती है (Sinha, 2012)।

भगवद्गीता में भारतीय मनोविज्ञान की आधुनिक प्रासंगिकता-

आधुनिक युग में मानव जीवन तीव्र प्रतिस्पर्धा, तनाव, अनिश्चितता और भावनात्मक असंतुलन से ग्रस्त है। तकनीकी प्रगति के बावजूद मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ-जैसे तनाव, चिंता, अवसाद, निर्णयात्मक द्वंद्व और जीवन-अर्थ का संकट आदि तेजी से बढ़ रही हैं। ऐसे समय में भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होता है।

भगवद्गीता में वर्णित *मन* की अवधारणा आधुनिक मनोविज्ञान के आत्म-नियमन (Self-Regulation) एवं भावात्मक-संयम (Emotional Control) से मेल खाती है। यहाँ मन को अभ्यास और वैराग्य द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। साथ ही कार्यस्थलों पर तनाव प्रबंधन के लिए भी भगवद्गीता का कर्मयोग विशेष रूप से उपयोगी है। *चित्त* की अवधारणा आधुनिक मनोविज्ञान के अवचेतन मन (**subconscious mind**) से साम्यता रखती है। पूर्व संस्कार वर्तमान व्यवहार को प्रभावित करते हैं, यह सिद्धांत आधुनिक मनोचिकित्सा में व्यवहार-परिवर्तन (behaviour modification) और मनोविश्लेषण की आधारशिला है। सकारात्मक कर्मों और विचारों के द्वारा चित्त की शुद्धि की जा सकती है (Jenning & Dass, 2023a)।

यहाँ *चेतना* की अवधारणा भगवद्गीता को आधुनिक मनोविज्ञान से आगे ले जाती है। जहाँ आधुनिक मनोविज्ञान चेतना को केवल संज्ञानात्मक प्रक्रिया मानता है, वहीं भगवद्गीता चेतना को आत्मतत्त्व से जोड़ती है। यह दृष्टि व्यक्ति को केवल मानसिक संतुलन ही नहीं, बल्कि जीवन के उच्च उद्देश्य की ओर भी प्रेरित करती है। आज के अस्तित्ववादी संकट (existential crisis) में यह दृष्टिकोण अत्यंत उपयोगी है। शिक्षा, नेतृत्व, प्रशासन और संगठनात्मक प्रबंधन के क्षेत्र में भी गीता की मनोवैज्ञानिक शिक्षाएँ



मार्गदर्शक सिद्ध हो सकती हैं। निष्काम कर्म, समत्व बुद्धि और स्थितप्रज्ञ की अवधारणा मूल्य-आधारित नेतृत्व (value-based leadership) को प्रोत्साहित करती है। भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान आधुनिक मानसिक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है तथा समग्र, संतुलित और सार्थक जीवन की दिशा में मानव को मार्गदर्शन प्रदान करता है।

निष्कर्ष-

प्रस्तुत शोध-अध्ययनके आधार पर यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भगवद्गीता में प्रतिपादित भारतीय मनोविज्ञान मानव मन की संरचना, कार्यप्रणाली और आध्यात्मिक उन्नयन को समझने का एक समग्र एवं गहन दृष्टिकोण प्रदान करता है। गीता केवल एक धार्मिक अथवा दार्शनिक ग्रंथ न होकर मानव चेतना, मानसिक द्वंद्व और आंतरिक संघर्षों का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करती है। अर्जुन का विषाद मानवीय मानसिक संकट का प्रतीक है, जिसके समाधान के माध्यम से गीता भारतीय मनोविज्ञान की व्यावहारिक उपयोगिता को प्रतिपादित करती है। इस अध्ययन से यह तथ्य उजागर होता है कि भगवद्गीता में *मन*, *चित्त* और *चेतना* को पृथक इकाइयों के रूप में नहीं, बल्कि परस्पर संबद्ध और एक-दूसरे पर निर्भर तत्वों के रूप में देखा गया है। मन जहाँ विचार, भावनाओं और निर्णयों का केंद्र है, वहीं चित्त व्यक्ति के पूर्व अनुभवों, संस्कारों और स्मृतियों का आधार बनता है। चेतना इन दोनों से परे स्थित होकर साक्षी रूप में संपूर्ण मानसिक गतिविधियों को प्रकाश प्रदान करती है। जब मन और चित्त असंयमित होते हैं, तब चेतना का तादात्म्य उनसे स्थापित हो जाता है, जिससे दुःख, भय और मोह की स्थिति उत्पन्न होती है।

भगवद्गीता इस स्थिति से मुक्ति के लिए अभ्यास, वैराग्य, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, निष्काम कर्म और विवेक जैसे उपायों का प्रतिपादन करती है। ये साधन न केवल मन को स्थिर करते हैं, बल्कि चित्त को शुद्ध कर चेतना को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रतिष्ठित करने में भी सहायक होते हैं। *स्थितप्रज्ञ* की अवस्था इसी आंतरिक संतुलन और चेतनात्मक परिपक्वता का प्रतीक है, जहाँ व्यक्ति जीवन की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में समभाव बनाए रखता है।

आधुनिक संदर्भ में, जब मानव, मानसिक तनाव, भावनात्मक असंतुलन और अस्तित्वगत संकट से जूझ रहा है, भगवद्गीता में निहित भारतीय मनोविज्ञान एक प्रभावी समाधान प्रस्तुत करता है। गीता की मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ आधुनिक मनोविज्ञान की आत्म-नियमन, माइंडफुलनेस, भावनात्मक बुद्धिमत्ता



और समग्र मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणाओं से सार्थक संवाद स्थापित करती हैं। शिक्षा, नेतृत्व, संगठनात्मक प्रबंधन और योग-चिकित्सा के क्षेत्र में इसके सिद्धांत व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं।

यह कहा जा सकता है कि भगवद्गीता में प्रस्तुत भारतीय मनोविज्ञान मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की दिशा में एक सशक्त वैचारिक ढाँचा उपलब्ध कराता है। मन, चित और चेतना का समन्वय न केवल मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करता है, बल्कि व्यक्ति को आत्मबोध, नैतिकता और जीवन के उच्च उद्देश्य की ओर उन्मुख करता है। इस प्रकार भगवद्गीता का मनोवैज्ञानिक दर्शन आज भी उतना ही प्रासंगिक, उपयोगी और प्रेरणादायक है जितना उसके रचनाकाल में था।

सन्दर्भ

1. Dhar, P. (n.d.). *Bondage and Liberation*.
2. Jennings, C. M., & Dass, B. H. (2023a). *Commentary on the Bhagavad Gita, Chapter 7.(bhagavadgītā: भगवद्गीता)*.
3. Jennings, C. M., & Dass, B. H. (2023b). *Commentary on the Bhagavad Gita, Chapter 7.(bhagavadgītā: भगवद्गीता)*.
4. Manglik, M. R. (2024). *मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ: Psychological Processes*. EduGorilla Publication.
5. Patel, R. M. (2016). श्रीमद् भगवद्गीता और योगतत्व समन्वयमीमांसा. *Vidhyayana-An International Multidisciplinary Peer-Reviewed E-Journal-ISSN 2454-8596, 2(2)*.
6. Pattanaik, D. (2015). *Business sutra*. Manjul Publishing.
7. Pestonjee, D., & Pandey, S. (2017). *Tanaav evam Karya: Tanaav ko Samajhne evam Prabandhan Sambandhi Drishtikon*. SAGE Publishing India.
8. Selye, H. (2017). आध्यात्मिक दृष्टिकोण. *Tanaav Evam Karya: Tanaav Ko Samajhne Evam Prabandhan Sambandhi Drishtikon, 267*.
9. Sharma, C. (2009). *Pashchatya Darshan Uttar-Pradesh-Rajya Dwara Puraskrit*. Motilal Banarsidass Publishe.
10. Sinha, H. P. (2012). *Bharatiya Darshan Ki Rooprekha*. Motilal Banarsidass.
11. SRIVASTAVA, D. V., & SHARMA, D. B. (2025a). *CHARITRA NIRMAN EVAM VYAKTITVA VIKAS*. SHREE VINAYAK PUBLICATION.



12. SRIVASTAVA, D. V., & SHARMA, D. B. (2025b). *CHARITRA NIRMAN EVAM VYAKTITVA VIKAS*. SHREE VINAYAK PUBLICATION.
13. Tomar, L. R. (2014). *Bhartiya Shiksha ke Mool Tatva*. Suruchi Prakashan.
14. Vidyalankar, J. (1990). *Bhāratīya manovijñāna*. Rādḥā Pablikeśansa.
15. डॉ. सुरेन्द्र पाल सिंह. (2025). भारतीय ज्ञान परंपरा में बुद्धि की अवधारणा: अर्थ, प्रकार, मापन-उपाय और जीवनोपयोगिता. *International Journal of Emerging Voices in Education*, 1(2), 09-16.
16. निधि, प्रांशु कुमार मौर्य, & अमित कुमार. (2025). समग्र स्वास्थ्य संवर्धन के परिपेक्ष्य में पतंजलि योग सूत्र की व्यवहारिक जीवन में भूमिका. *International Journal of Advances in Social Sciences*, 13(3), 163-169.

